

शब्द अभी-भी क्यों गाते हैं Why the Words Still Sing

अविजीत घोष
Avijit Ghosh
April 8, 2013

पिछले महीने जब सन् 2012 में चिटगौंग फ़िल्म के गीत “बोलो न” को सर्वश्रेष्ठ गीत का पुरस्कार मिला तो जिन संगीत प्रेमियों ने यह गाना सुना भी नहीं था, उन्होंने भी इंटरनेट पर इसे सुनने के लिए तुरंत लॉग ऑन कर लिया. प्रसून जोशी द्वारा रचे गये इस गीत में वसंत के आगमन पर जल्द ही खिलने वाली बंद कलियों के लजीले प्यार का वर्णन किया गया है. इसके बोल हैं: बोलो न , बोलो न //ऋतुओं को घर से निकलने तो दो // बोये थे मौसम खिलने तो दो //होठों की मुंडेर पर रुकी // मोतियों सी बात बोल दो // फीकी-फीकी सी है ज़िंदगी //चीनी-चीनी ख्वाब घोल दो //.

जब तक इस बेहतरीन गीत को राष्ट्रीय पुरस्कार नहीं मिला था, तब तक लोगों का इस पर ध्यान नहीं गया था, लेकिन पुरस्कार मिलने पर ही लोगों का ध्यान इस पर गया. “बोलो न” हिंदी संगीत फ़िल्म के इतिहास में दर्ज हो गया है. हर गीत इतना भाग्यशाली नहीं होता. कई मधुर धुनों से सजे बेहतरीन गीत प्रसिद्धि के शिखर पर नहीं पहुँच पाते. रेगिस्तान में खिले फूलों की तरह वे अदृश्य होकर नष्ट हो जाते हैं, न कोई उन्हें सुन पाता है और न ही उन्हें जान पाता है.

इन दिनों लोग इस बात को लेकर चिंतित हैं कि हिंदी के फ़िल्मी गीत घटिया होने लगे हैं. आम तौर पर लोग मानने लगे हैं कि गीतों का स्वर्ण युग खत्म हो चुका है और अब वह बीते दिनों की बात हो गयी है. जब पार्टियों में “चिकनी चमेली” (*अग्निपथ*) “अनाकरली डिस्को चली” (*हाउसफुल 2*) और “हलकट जवानी” (*हीरोइन*) जैसे गानों की धूम मची रहती है तो इस बात को मानना ही पड़ता है. और सन् 2010 में चली इस लोकप्रिय बहस को कोई कैसे भूल सकता है कि “मुन्नी बदनाम हुई” (*दबंग*) और “शीला की जवानी” (*तीसमार खाँ*) में से किस गाने का संगीत बेहतर है.

पॉप चार्ट लोकप्रिय पसंद की निर्दय संख्या के संकेत मात्र ही होते हैं. हर साल बेहतरीन गीतों की जो फसल लहराती है वह इस शोरगुल में कहीं खो जाती है. यही कारण है कि ये गीत बहुत कम सुनाई देते हैं. गीतकारों को शिकायत रहती है कि गीत का भाग्य उसकी गुणवत्ता से तय नहीं होता है, बल्कि इस बात से तय होता है कि वह टेलीविज़न पर फ़िल्म के प्रचार- पैकेज का हिस्सा है या नहीं. औसतन एक फ़िल्म में पाँच-छह गीत होते हैं. उनमें से केवल एक-दो गीत ही प्रचार के लिए चुने जाते हैं. आम तौर पर लोकप्रिय धुनों पर आधारित गानों या आइटम नंबर को ही प्राथमिकता मिलती है, क्योंकि इन्हें नाइट क्लबों में गाया जा सकता है और शादी-ब्याह के अवसर पर आयोजित समारोहों में या टीवी शो में फ़िल्मी कलाकार इन्हें ही गाना पसंद करते हैं. ऐसे गानों के पक्ष में सांस्कृतिक अर्थव्यवस्था भी काम करती है. मीठी लय के बावजूद कम लोकप्रिय गीतों को, भले ही उनका अर्थ कितना भी सारगर्भित क्यों न हो, इन समारोहों में शामिल नहीं किया जाता और खास तौर पर तब जब वे गीत किसी छोटे बजट की फ़िल्म के लिए लिखे गये हों.

फिर भी वर्तमान हिंदी संगीत का परिदृश्य सकारात्मक ही अधिक दिखायी देता है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि पचास और साठ के दशकों का संगीत बहुत मधुर था और उनमें साहित्यिकता का पुट भी कम नहीं था। लेकिन उनमें कुछ कमी भी थी। अधिकांश गीतों की भाषा कवि की अपनी भाषा होती थी, पात्रों की नहीं। वास्तव में संगीता गोपाल और सुजाता मूर्ति ने “ग्लोबल बॉलिवुड” शीर्षक से लिखे अपने परिचयात्मक लेख में संगीतज्ञ अशरफ़ अज़ीज़ का उद्धरण देते हुए कहा है कि शैलेंद्र एक “आदर्श फ़िल्मी गीतकार” थे, क्योंकि उन्होंने बहुत-ही सटीक और कम से कम शब्दों में उपमानों का प्रयोग करते हुए गीतों की रचना की और अपने ही गीतों को रीसाइकिल करते हुए फ़िल्मी शिल्प के अनुरूप उन्हें ढाला।”

मशहूर उर्दू शायर और गीतकार निदा फ़ाज़ली ने इस बात को यों समझाया है। वे कहते हैं, “गीतों को भी एक ही तरह से रचा जाता था।” दूसरे शब्दों में, “कोई भी अभिनेता भले ही वह मोटर मैकेनिक, क्लर्क, पुलिस अधिकारी या रिक्शा चलाने वाले की भूमिका में हो, गाना तो वह गीतकार की भाषा में ही गाता था। इस अर्थ में “आज के गीतकार गाने वाले पात्रों की भाषा में ही अपने गीत रचते हैं।” फ़ाज़ली साहब आगे कहते हैं, “इस अर्थ में आज के अभिनेता जिस भूमिका में होते हैं, उसी की भाषा में गाने भी गाते हैं।”

बैंड, बाजा और बारात फ़िल्म के एक गीत में प्रयुक्त “ऐंवेई” पंजाबी में बोलचाल का एक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है, “ऐसे ही” या “बिना किसी कारण के”। जिस पात्र की सामाजिक पृष्ठभूमि में यह गीत रचा गया है उसका सामाजिक स्तर बहुत साधारण है। वह अपनी बोली में ही गीत गाता है।

इस गीत के रचयिता अमिताभ भट्टाचार्य कहते हैं कि वे ऐसे गीत संबंधित पात्रों को ध्यान में रखकर उनकी बोली में ही रचते हैं। वे कहते हैं, “मैं निजी तौर पर फ़िल्म के संवाद के मसौदे पर ज़ोर देता हूँ इसलिए मैं जानता हूँ कि पात्र कौन-सी भाषा बोल रहा है और यथासंभव उसी भाषा में गाने भी लिखता हूँ। इसी कारण गाना भी पात्र का अपना ही लगता है।”

पात्र के संवादों के नज़दीक होने के अलावा आजकल के अनेक गीतकार अपनी अंदरूनी विचार-श्रृंखला के भी बहुत करीब होते हैं। खास पृष्ठभूमि में गाये जाने वाले गीतों के बढ़ते चलन के कारण इस प्रवृत्ति को और भी अधिक बल मिला है। *रॉकेट सिंह* फ़िल्म के गीत “पंखों को हवा ज़रा सी लगने दो” (गीतकार: जयदीप साहनी) को ही देखें। यह गीत उस लड़के के भावी जीवन को बयान करता है जिसने मात्र 39 प्रतिशत अंक लेकर स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की है। गीत के अगले बोल हैं: उलझे नहीं तो कैसे सुलझोगे// बिखरे नहीं तो कैसे निखरोगे//

सटीक गीतलेखन के और भी बहुत-से उदाहरण हैं। प्रसून जोशी फ़िल्म *दिल्ली 6* के लिए लिखते हैं, दरारें दरारें हैं माथे पर मौला // मरम्मत मुकद्दर की कर दे मौला // मरम्मत जैसे शब्द असाहित्यिक तो लगते हैं लेकिन इस शब्द का प्रयोग बहुत सटीक रूप में हुआ है, क्योंकि माथे पर पड़ी सलवटों के संदर्भ में इसका बहुत ही उपयुक्त रूप में प्रयोग किया गया है।

और फिर गुलज़ार यादों की पगडंडियों से गुज़रते हुए कहते हैं, “जब भी सिगरेट” (नो स्मोकिंग): दम में धागे धुएँ के, साँस सिलने लगी है, प्यास उधड़ती हुई है, होंठ छिलने लगे हैं // धूम्रपान से होने वाली हानि को काव्य की भाषा में बहुत ही खूबसूरती से प्रकट किया गया है.

“पहली बार मोहब्बत की है” (*कमीने*) के गीत में गुलज़ार ने एक और विशेष बात दिखायी है. एक स्थल पर वे लिखते हैं, “एक ही लट सुलझाने में सारी रात बितायी है”. इस कल्पना में विलक्षण लालित्य है, लेकिन बहुत कम लोग इन गीतों के सौंदर्य पर ध्यान देते हैं, क्योंकि इन गीतों के बोल भारी संगीत से ढक जाते हैं.

इसके अलावा, पीयूष मिश्रा द्वारा लिखित *वासेपुर के गैंग* का आरंभिक गीत प्रथम श्रेणी का गीत है. “इक बगल में चाँद होगा, एक बगल में रोटियाँ, इक बगल में नींद होगी, इक बगल में लोरियाँ.”

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि व्यावसायिक रूप में काम करते हुए अच्छी कविता की सीमा होने के बावजूद बॉलिवुड में ताज़े और रचनात्मक ऊर्जा के साथ बहुत मधुर स्वर में भी बेहतरीन गीत लिखे जा रहे हैं. गीतकार बोलचाल की भाषा में प्यार का इज़हार करने लगे हैं और सभी भावनाओं को आधुनिक जीवन शैली के अनुरूप व्यक्त करने लगे हैं. गीतों के परिवेश में वे अधिक सहज अनुभव करने लगे हैं. सीधे तरीके से कहें तो इसने मुंबई सिनेमा और भारत की अपनी पहचान बना ली है. और यही कारण है कि हिंदी फ़िल्मों में बेहतरीन कविता की मौत की अफ़वाह सच नहीं है.

आगे आने वाले वक्त में मुंबई सिनेमा में आइटम नंबर की भरमार के साथ-साथ सार्थक कविता वाले गीतों की भी बहुतायत होगी. बस मुश्किल यही होगी कि हमारा ध्यान अच्छी कविता वाले गीतों के बजाय आइटम नंबर पर ही अधिक रहेगा. विडंबना यही है कि शब्दों की गुणवत्ता में तो इजाफ़ा हो रहा है, लेकिन गीतकारों का महत्व कम हो रहा है. यही समय की विडंबना है.

अविजीत घोष टाइम्स ऑफ़ इंडिया में वरिष्ठ संपादक हैं वे ‘कैसी’ स्प्रिंग (वसंत) 2013 में विज़िटिंग स्कॉलर हैं. उनसे avijitghosh65@gmail.com पर संपर्क किया जा सकता है.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>